समयसार, १५३ गाथा। इसका उपोद्घात। **अब यह कहते हैं कि ज्ञान ही मोक्ष का हेतु है और अज्ञान ही बन्ध का हेतु है, यह नियम है:-**

वदणियमाणि धरंता सीलाणि तहा तवं च कुव्वंता।
परमट्ठ-बाहिरा जे णिव्वाणं ते ण विंदंति।।१५३।।

व्रत नियम को धारे भले, तपशील को भी आचरे।
परमार्थ से जो बाह्य वो, निर्वाणप्राप्ती नहिं करे।।१५३।।

चार बोल तो पाठ में आये। पहले व्रत और तप दो आये थे। इसमें चार आये—व्रत, नियम, शील और तप, (ऐसे) चार। पाठ में चार आये हैं।

टीका : ज्ञान ही मोक्ष का हेतु है;.. अर्थात्? यह ज्ञान अर्थात् त्रिकाली ज्ञान, त्रिकाली आत्मा-ऐसा यहाँ नहीं। जो त्रिकाली आत्मा ज्ञानसत्व, अनन्त गुण का सत्व है, उस सत्व का पर्याय में सत्वपना आवे; जैसा अन्दर है, आत्मा में अनन्त ज्ञानादि रस, सत्व (भरा है), ऐसा जो सत्व है, उसका सत्व का परिणमन में उस सत्व का परिणमन आवे, उसका जो अबन्धस्वरूप है, मोक्षस्वरूप है, अबन्ध कहेंगे, ऐसा जिसका परिणमन में अबन्धस्वरूप-मोक्षस्वरूप का परिणमन, सत्व आवे। सत् का सत्व पर्याय में आवे, ऐसा कहते हैं। पुण्य और पाप के भाव (होते हैं), वह सत् का सत्व नहीं है। वह तो अद्धर से

खड़ा हुआ विकृत भाव है। यहाँ उसे बन्धभाव कहेंगे। पुण्य और पाप, व्रत, तप, शील को भावबन्ध (कहते हैं)। यह (आत्मा) भावमोक्ष (स्वरूप है)।

भगवान आत्मा, मोक्षस्वरूप सत्व है। उसका पर्याय में जो सत् का सत्व है अर्थात् सत् का जो कश है... आहाहा! वह कश जो पर्याय में आवे, उसे यहाँ ज्ञान कहते हैं। आहाह! भगवान आत्मा..! यहाँ स्वयं कहेंगे, मुक्तस्वरूप है। मुक्तस्वरूप है तो मोक्ष का कारण होता है, ऐसा। विकार है, वह तो बन्धस्वरूप है। वह भावबन्ध बन्धस्वरूप ही है। भावबन्ध है, वह बन्ध का कारण होता है।

ज्ञान ही.. (ऐसा कहकर) एकान्त किया है। कथंचित् आत्मा का ज्ञान परिणमन, अनन्त गुण का सत्व का परिणमन और कथंचित् व्यवहार-राग, मोक्ष का कारण है-ऐसा नहीं कहा। दया, दान, व्रत, शील, तप कुछ न कुछ इसके सत्व के परिणमन में मदद करते हैं, ऐसा नहीं है। यह तो आ गया है न पहले? प्रवचनसार! कि जो द्रव्य है, वह गुण और उसकी पर्याय को पहुँचता है। यहाँ निर्मल पर्याय को पहुँचता है, इतना लेना। वहाँ तो मलिन-निर्मल समस्त (पर्यायों की) बात थी। आहाहा!

जो भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञानादि सत्व का रस है, वह आत्मा का कस है। आहाहा! वह कस है, उसका पर्याय में परिणमन होना, उसे यहाँ ज्ञान कहने में आता है। आहाहा! वह **ज्ञान ही..** वापस (ही कहकर) एकान्त किया। सम्यक् एकान्त! वह **ज्ञान ही मोक्ष का हेतु है;..** आहाहा! भगवान आत्मा में अनन्त गुण का पूरा रस पड़ा है, सत्त्व है। वह सत् का सत्त्व है, वह सत् का कस है। आहाहा! त्रिकाली ज्ञान, दर्शन और आनन्द आदि अनन्त गुण हैं, वह सत् का सत्त्व है, वह सत् का कस है। उस पर दृष्टि पड़ने पर जो सत् का सत्त्व है, वह सत्त्व पर्यायरूप से परिणमित होता है। भले वह सत्त्व गुण है, वह तो भले गुणरूप रहता है परन्तु उस जाति का परिणमन, सत्त्व का सत्त्वरूप का (परिणमन), उसका अपने में है, उस प्रकार का परिणमन। वह राग और पुण्य, दया, वह कहीं आत्मा का कस नहीं है, आत्मा का सत्त्व नहीं है। वह तो बन्धसत्त्व स्वरूप है। आहाहा! कठिन काम है। लोग एकान्त.. एकान्त.. कहते हैं।

ज्ञान ही, आत्मा का चैतन्यस्वभाव, जो अनन्त गुण से भरपूर भण्डार है, उसका परिणमन और उसकी दशा (होती है), वह द्रव्यशुद्ध, गुणशुद्ध और पर्याय भी उस प्रकार

की शुद्ध (होती है)। आहाहा! वह एक ही मोक्ष का हेतु है। आहाहा! **क्योंकि ज्ञान के अभाव में..** भगवान ज्ञानस्वरूपी प्रभु, अनन्त-अनन्त गुण का रसकन्द प्रभु आत्मा के भाव के परिणमन बिना... आहाहा! **स्वयं ही अज्ञानरूप होनेवाले अज्ञानियों के..** आहा! जिसे आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप प्रभु है, अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय शान्ति, अतीन्द्रिय गुण का रसकन्द है, उसकी पर्याय में उसके सत्त्व के भाव बिना अज्ञानियों के जो **अन्तरंग में व्रत,..** करे। व्रत पाले, व्रत! वह संसार है, बन्ध है। आहाहा! वह वस्तु में नहीं है। आहाहा!

व्रत और तप दो शब्द तो आये थे। इस गाथा में चार शब्द हैं। मूल पाठ है। व्रत, नियम धारण करना, विकल्प (करना), आहाहा! शील, कषाय की मन्दता का भाव (होता है), मन्द, मन्द अत्यन्त मन्द (होता है)। ऐसा उसका स्वभाव कि शरीर से ब्रह्मचर्य पालना, ऐसा जो शील और तप। जो विकल्प उठता है, बारह प्रकार के तप में से विकल्प उठे, वह इत्यादि। जितने पर के लक्ष्य से उत्पन्न हुए असंख्य प्रकार के शुभभाव। देखो न, यहाँ तो शुभ का डाला है न!

इत्यादि शुभ कर्मों.. अर्थात् शुभकार्य। देखा? यहाँ कर्म अर्थात् वह जड़कर्म नहीं। आहाहा! पर्याय में व्रत, तप, शील, नियम इत्यादि विभाव के असंख्य प्रकार (होते हैं), वह कोई जीव का सत् नहीं है, उसका सत्त्व नहीं है, जीव का स्वभाव नहीं है। आहाहा! ऐसे जीव के स्वभाव के अभाव के कारण अज्ञानी को पर्याय में जो व्रत, शील, तप होता है, वह सब **शुभ कर्मों का सद्भाव (अस्ति)..** हो। ऐसी शुभकर्म की अस्ति **होने पर भी..** है, कहते हैं, उसका शुभभाव बराबर है, ऐसा। आहाहा! व्रत का भाव, तप, उपवास आदि का (भाव), शील के नियमादि—कठोर नियम धारण करे। ऐसे शुभभाव की अस्ति है। है न?

ऐसे कार्य के अभाव में (स्वयं ही) **अज्ञानरूप होनेवाले अज्ञानियों के अन्तरंग में व्रत, नियम, शील, तप इत्यादि शुभ कर्मों का सद्भाव होने पर भी..** आहाहा! शुभ आचरण के शुभपरिणाम का भाव होने पर भी। उनकी अस्ति-मौजूदगी है। शुभभाव है, परन्तु ज्ञायकभाव के सत्त्व के भान बिना, चैतन्य का रसकन्द जो स्वरूप प्रभु है, उसके सत्त्व के परिणमन के भान बिना ऐसे व्रत, तप, नियम और शील (आदि के) शुभकर्म होने

पर भी **मोक्ष का अभाव है।** ऐसे शुभभाव हों, भले मौजूदगी धरावे। आहाहा! शुक्ललेश्या हो, वह भाव अस्ति धराता है, परन्तु वह भाव इसे मोक्ष का कारण नहीं है, क्योंकि भगवान आत्मा विकाररहित सत्त्व का सत् है, उस ओर के परिणमन का सत्त्व आये बिना ऐसे भावों की मौजूदगी होने पर भी उसे **मोक्ष का अभाव है।** आहाहा! है?

अज्ञान ही बन्ध का कारण है;.. अब सामने डालते हैं। स्वरूप का अज्ञान अर्थात् व्रत, तप, शील, नियम (के भाव हैं), वह अज्ञान है। आहाहा! उसमें ज्ञान का अंश नहीं है, (इसलिए) अज्ञान है। आहाहा! **अज्ञान ही.. अज्ञान ही..** वापस (कहा है)। वहाँ भी एकान्त किया है। **बन्ध का हेतु है;..** अर्थात् आत्मा के स्वभाव का परिणमन (होता है) वह बिल्कुल बन्ध का हेतु नहीं है। आहाहा! वह तो मोक्ष का ही हेतु है। एक ओर भगवान आत्माराम। आत्मराम का जो परिणमन है... आहाहा! वह तो बिल्कुल बन्ध के अभावकारणरूप; मोक्ष के सद्भाव के कारणरूप है।

आता है न कितनी ही जगह? कि मोक्षमार्ग है, वह भी बन्ध का कारण है। ऐसा (कितने ही) लिखते हैं। 'असमग्र' पुरुषार्थसिद्ध्युपाय (में आता है)। जो बन्ध का कारण है, वह बिल्कुल अबन्ध का कारण नहीं हो सकता और जो अबन्ध का स्वरूप प्रभु है, मुक्तस्वरूप ही है। आत्मा तो अबन्धस्वरूप ही है, उसके गुणों का सत्त्व पूरा अबन्धस्वरूप है। आहाहा! वह प्रभु स्वयं और उसके अनन्त गुण, वे सब मुक्तस्वरूप, सत् के सत्त्वस्वरूप, कश स्वरूप, उनका जो परिणमन (होता है), उसका-सत् का पर्याय में कस आता है, वह बिल्कुल मोक्ष का कारण है (और) बन्ध का कारण बिल्कुल नहीं है। समझ में आया? और जो आत्मा के स्वभाव के चैतन्यबिम्ब प्रभु, अनन्त गुण का रसकन्द, उसके सत् का सत्त्व परिणमन में आये बिना अज्ञानी को मोक्ष का कारण है नहीं। आहाहा!

अज्ञान ही बन्ध का हेतु है; क्योंकि उसके अभाव में.. किसके अभाव में? अज्ञान के अभाव में। आहाहा! अर्थात् राग और द्वेष की पर्याय अज्ञानस्वरूप है, वही बन्ध का कारण है। **उसके अभाव में..** आहाहा! है? **स्वयं ही ज्ञानरूप होनेवाले ज्ञानियों के..** आहाहा! स्वयं ही आत्मा का स्वभाव, शुद्ध परिपूर्ण भगवान आत्मा, उसके रूप से स्वयं हुए। आहाहा! **उसके अभाव में..** किसके अभाव में? बन्ध के अभाव में। **स्वयं ही ज्ञानरूप होनेवाले..** अर्थात्? भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञान, शान्ति और प्रभुता के

शक्तिरूप जो सत्त्व है, उसरूप स्वयं ही परिणमन में हुआ है। उसे कोई व्यवहार के व्रत, नियम की अपेक्षा है नहीं। यहाँ तो दूसरी बात करेंगे। आहाहा!

ज्ञानरूप होनेवाले ज्ञानियों के.. अन्तर के आत्मा के स्वभाव के पर्याय में उस स्वभाव का परिणमन होने से उन ज्ञानी के **बाह्य व्रत, नियम, शील, तप, इत्यादि शुभ कर्मों का असद्भाव होने पर भी..** आगे बढ़कर अकेला आत्मपरिणमन हो गया, उसे यह व्रत, नियम, शील का तो अभाव है, तथापि मोक्ष का कारण है। आहाहा! समझ में आया?

दो ओर से लिया। एक ओर भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यघन ही है। एक समय की पर्याय में जो विकार है, वह अज्ञान है। इससे पूरा स्वरूप जो है, उसका जो परिणमन होना, वह मोक्ष का कारण है, उसमें बन्ध का बिल्कुल अभाव है और उस आनन्द के ज्ञान के स्वभाव के भाव के परिणमन बिना अकेले राग-द्वेष, व्रत, नियम, शील, तप (करे, वह) अकेला बन्ध का कारण है। बिल्कुल मोक्ष के कारण में मददगार, सहायक (नहीं है)। निमित्त कहलाता है, निमित्त कहलाने का अर्थ यह (कि) निमित्त कुछ करता नहीं। आहाहा! व्रत, नियम के विकल्पों को शुद्धज्ञान के परिणमन में निमित्त कहा जाता है। निमित्त का अर्थ (यह कि) एक दूसरी चीज़ है। उससे हुआ है और होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा!

ज्ञानियों के.. ऐसे ज्ञानी यहाँ लिये हैं कि जिनका परिणमन उग्र हो गया है। अकेला चैतन्यमूर्ति भगवान, जैसा उसका स्वभाव त्रिकाली, निर्मल शुद्ध रसकन्द है, वैसा ही जिसका परिणमन हो गया है, उसे ये व्रत, नियम, शील हैं नहीं। आहाहा! यह **बाह्य व्रत, नियम, शील, तप, इत्यादि शुभ कर्मों का असद्भाव..** है। (ऐसा) **होने पर भी मोक्ष का सद्भाव है।** आहाहा!

मुमुक्षु : बाह्य शब्द लिखा है तो वे बाह्य व्रत हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : बाह्य सब विकल्प की बात है। बाह्य व्रत अर्थात् शरीर की क्रिया नहीं, विकल्प।

व्रत, शील और तप (ऐसी जो) राग की क्रिया है, वह अज्ञानरूप है और बन्ध का

ही कारण है। उसके अभाव में अकेले ज्ञानस्वभाव के, आनन्दस्वभाव के, चैतन्यस्वभाव के परिणमन में बन्ध के भाव का बिल्कुल अभाव है। अकेले ज्ञान और आनन्दभाव से परिणमित हुआ है। उसे व्रत, नियम का अभाव है तो भी मोक्ष का कारण है। आहाहा!

अज्ञानी को व्रत, नियम, तप, शील की मौजूदगी है, पंच महाव्रत है, पाँच समिति, गुप्ति व्यवहार है। ऐसा व्यवहार भाव होने पर भी वह बन्ध का कारण है। अकेले बन्ध का कारण है; बिल्कुल मोक्ष के कारण में वह सहायक नहीं है, क्योंकि जहाँ आत्मा—भगवान आत्मा अपना जो द्रव्य है और उसके जो आनन्द आदि त्रिकाली शुद्ध गुण हैं, उसरूप जहाँ परिणमन हुआ, उसे व्रत और नियम का अभाव है, तो भी मोक्ष का कारण है। आहाहा! ऐसा है।

वे शोर मचाते हैं। ऐई! सोनगढ़िया ऐसा करते हैं और वैसा करते हैं। बापू! भाई! तेरे हित की बात है, प्रभु! आहा! इसमें तेरा अनादर नहीं उसमें। तू अन्दर महा प्रभु है! आहा! अकेला अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय शान्ति, अतीन्द्रिय प्रभुता का रसकन्द-सत्त्व है न! उस सत्त्व का परिणमन होता है.. आहाहा! उस परिणमन के काल में व्रत और नियम, शील, तप का अभाव होने पर भी मोक्ष का कारण होता है। आहाहा! और अज्ञानी को अपना भगवान आत्मा, उसके शुद्ध के सत्त्व के परिणमन के अभाव में उसे व्रत, नियम, शील, तप बन्ध का ही कारण है। आहाहा! कितनी बात की है, कहो! बिल्कुल मोक्ष के मार्ग को जरा भी सहायक हो, ऐसा नहीं है। आहाहा!

सबने यह डाला है। विद्यासागर ने यह डाला, भाई ने जगन्मोहनलालजी ने यह डाला है। व्रत, नियम (आदि के) शुभभाव अन्दर शुद्धता का कारण है अर्थात् उससे शुद्ध में जाया जाता है। आहाहा! जहर पीते-पीते अमृत की डकार आयेगी! ऐसा वह अर्थ है। सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा!

यहाँ ज्ञान शब्द से उसका परिणमन लेना है। परिणमन-ज्ञान का परिणमन है। मूल ज्ञान शब्द में कहीं त्रिकाली गुण नहीं है। नहीं तो त्रिकाली गुण-कारणपरमात्मा भी मोक्ष का ही कारण है, परन्तु अभी यह बात नहीं है। अभी तो पर्याय ज्ञानरूप से, आनन्दरूप से प्रगट हुई है, वह वस्तु में जो सत् है, उसरूप से पर्याय में परिणमन हुआ है, उसे यहाँ ज्ञान कहने में आता है। आहाहा!

अब ऐसा महँगा! सुनने को मिलता नहीं और सुनने को मिले तो उल्टा मिलता है। निवृत्ति मिलती नहीं। आहाहा! यह करो, यह करो, व्रत करो, तप करो, व्यवहारचारित्र पालन करो। व्यवहारचारित्र अर्थात् राग।

मुमुक्षु : व्यवहार को पोषण करो।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे पालन करो, उसे करो, वह मार्ग है। अन्तर शुद्धता (की ओर) जाने का रास्ता है। अशुभ को टालकर शुभ करना वह शुद्ध में जाने का रास्ता है, ऐसा (अज्ञानीजन) स्थापित करते हैं। अरे! दोनों जातियों में भेद है, दो वस्तुभेद है। आहाहा! एक कुजात है और एक सुजात है। आहाहा!

अन्दर भगवान आत्मा, अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. पवित्र गुण का धाम! आहाहा! उसका आश्रय लेने से, उस ओर की एकाग्रता, दृष्टि होने से उस पूर्ण स्वरूप का ज्ञान की पर्याय और श्रद्धा की पर्याय में स्वीकार होने से, पर्याय सत्त्व का सत्त्व है, उसरूप परिणमित होती है। आहाहा! वह बन्ध के भाव की (सहायता से) जरा भी परिणमती है, यह नहीं है। आहाहा! यह क्या करना? नवलचन्दभाई! दूसरा कुछ सरल होगा या नहीं? सरल अर्थात् राग। मार्ग यह है। आहाहा!

स्वयं ही ज्ञानरूप होनेवाले ज्ञानियों.. अर्थात् स्वयं क्यों कहा? कि कुछ वह व्रत और शील तथा तप था, इसलिए यहाँ ज्ञानरूप, आनन्दरूप परिणमन हुआ, ऐसा नहीं है। आहाहा! स्वयं भगवान आत्मा, पूर्णानन्द के नाथ प्रभु का अवलम्बन लेकर स्वयं ही स्वयं शुद्धरूप से परिणमित हुआ। यह ज्ञान हुआ, यह परिणमन हुआ, वह आत्मा की दशा हुई। वह आत्मा के स्वभाव की दशा हुई। आहाहा!

उस ज्ञानी को **बाह्य व्रत, नियम, शील, तप, इत्यादि शुभ कर्मों..** देखा? वह कर्म अर्थात् वे जड़ (कर्म) नहीं लिए। भाव, शुभभाव है, वह भावकर्म शुभ विकारी है। आहाहा! मूल पाठ में है न! मूल पाठ है न! **'वदणियमाणि धरंता सीलाणि तहा तवं च कुव्वंता'** लो! **'परमट्ठ-बाहिरा'** (अर्थात्) परमार्थ भगवान चैतन्य का सत्त्व तो हाथ आया नहीं। आहाहा! परम प्रभु भगवान आत्मा मौजूद हाजरा हुजूर पड़ा है! आहाहा! अनन्त गुण से विराजमान आत्मा, उसे तो हाथ लगा नहीं, उसका पता लिया नहीं, वे सब

'परमट्ठ-बाहिरा' है, परमार्थ से बाह्य है। आहाहा! यह तो लड़कों को समझ में आये, ऐसी भाषा है। हमारे धर्मचन्द मास्टर कहते हैं न! चार पुस्तक (कक्षा) पढ़ा हो, उसे समझ में आये ऐसी बात है, ऐसा कहते हैं। नहीं? यह तो हमारे धर्मचन्द ऐसा कहते हैं कि यह तो ऐसी सरल भाषा है (कि) चार पुस्तकवाला (भी समझ जाए)। आहाहा! भगवान आत्मा है न! उसे पुस्तक के पठन का क्या काम है? आहाहा!

तुष-माष... क्या नाम? शिवभूति मुनि! आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की खान और महा भोंयरा, भण्डार! आहाहा! उसका जहाँ पता लिया और जहाँ एकाग्र हुआ तो कहते हैं कि (उन्हें) तुष-माष के शब्द भी याद नहीं रहे। तुष अर्थात् छिलका, माष अर्थात् उड़द का कस। वह महिला उड़द की दाल धो रही थी। उड़द की दाल पड़ी हुई, वह धो रही थी। वह छिलका निकालती थी। शिवभूति मुनि निकले, (वहाँ) किसी महिला ने पूछा, माँ! क्या कर रही हो तुम? (तो महिला ने कहा), तुष-माष—छिलका और माष। माष अर्थात् उड़द की दाल, उड़द, कस दोनों को भिन्न कर रही हूँ। आहाहा! छिलका ऊपर का और वह उड़द की दाल, जो कस हो, वह अलग करते हैं। आहाहा! इतना जहाँ उन्होंने सुना.. ओहो! अन्दर भगवान, जैसे सफेद उड़द की दाल.. क्या कहलाता है? सफेद को क्या कहते हैं? छड़ी.. छड़ी..! छड़ी दाल। तुम्हारी भाषा हो वह आना चाहिए न तब! छड़ी दाल कहते हैं, छड़ी दाल! वह छिलका निकाल डाले (अर्थात्) छिलकेरहित दाल (रहे)। वैसे ही भगवान आत्मा, ऐसा जहाँ सुना कि तुष-माष, जो विकल्प है, वह तुष-छिलका है। ज्ञान तो था, भान था परन्तु स्थिरता नहीं थी, उसमें जरा ये शब्द जहाँ कान में पड़े... अरे! माष अर्थात् सफेद उड़द की दाल। वैसे आत्मा श्वेत / उज्ज्वल, शुद्ध चैतन्यघन, आनन्दकन्द और व्रत, नियम के विकल्प (होते हैं), वे तो बन्ध के कारण और राग—छिलका है। उस छिलके और माष को ऐसे जहाँ भिन्न किया वहाँ स्थिर हुए, वहाँ केवलज्ञान हो गया!! आहाहा! कहो, समझ में आया? शिवभूति मुनि! आहाहा! जो करना है, वहाँ उनकी दृष्टि और स्थिरता पहुँच गयी। आहाहा! अब उसे कहते हैं व्रत और नियम नहीं है तो भी वह मोक्ष का कारण है। आहाहा!

मुमुक्षु : व्रत और नियम मोक्ष का कारण नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ; व्रत, नियम, तप और शील मोक्ष का कारण नहीं है। जो बन्ध

का कारण है, वह मोक्ष के कारण में मदद करे, सहायक हो, ऐसा लिखा है। अरे प्रभु! सहायक की व्याख्या क्या है? निमित्त होता है इतना, धर्मास्तिकायवत्। आहाहा!

मुमुक्षु : पहले व्यवहार ज्ञान करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार ज्ञान करे, वह बिल्कुल-कुछ मदद नहीं करता अन्दर। आवे भले, परन्तु उससे नहीं होता। यह तो पहले आया नहीं? शास्त्र पढ़ना और यह। तो भी जब तक परलक्ष्यी विकल्प है और उससे जो उघड़ा हुआ ज्ञान है, उससे आत्मा का ज्ञान नहीं होता। आहाहा! भाव ज्ञान के अवलम्बन द्वारा, आया था न? भाव ज्ञान के अवलम्बन द्वारा दृढ़रूप से.. आहाहा! अन्दर में एकाग्र होता है। आहाहा! प्रवचनसार में आया था। आहाहा! बात तो बहुत थोड़ी है, परन्तु माल है बड़ा! आहाहा!

भगवान आत्मा! शरीरप्रमाण आत्मा, ऐसा कहलाता है परन्तु बापू! वह भगवान-स्वरूप है, भाई! आहाहा! वह परमेश्वर है, वह जिन है, वह वीतराग है, वह केवलज्ञान है-अकेला ज्ञान का पिण्ड सर्वज्ञस्वभाव है। आहाहा! सर्वदर्शी स्वभाव है, अनन्त वीर्य अर्थात् पुरुषार्थ है। आहाहा! इन सबका अनन्त सत् का सत्ता का स्वरूप ऐसा है। आहाहा! उसका परिणमन होने पर बाह्य व्रत, तपादि न हों तो भी मोक्ष का कारण है, कहते हैं। आहाहा! और अन्तर का यह भगवान आत्मा जगा नहीं, जगाया नहीं.. आहाहा! उसके अभाव में, कहा न? स्वरूप के सत्त्व के भान बिना। उसमें व्रत, शील, तप है, वह तो अकेला बन्ध का कारण है। आहाहा! तब कहे, अन्दर मोक्ष के मार्ग के साथ ऐसा व्यवहार होता है, इसलिए उससे कुछ न कुछ मदद तो मिलेगी या नहीं? कुछ, थोड़ा उससे धीरे-धीरे शुभभाव में आवे तो थोड़ा विश्राम मिले, फिर अन्दर स्थिर में जाया जाए। आहाहा! ऐसा नहीं है। विश्रामस्थान! विश्रामस्थान तो प्रभु है। जो राग और विकल्परहित स्थान-धाम है।

स्वयं ज्योति सुखधाम है। आहाहा! श्रीमद् में आता है न? 'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन, स्वयं ज्योति सुखधाम।' शुद्ध, बुद्ध! आहाहा! शुद्ध बुद्ध स्वयं। चैतन्यघन (अर्थात्) प्रदेश लिए। 'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन' पवित्र ज्ञान का पिण्ड, असंख्यप्रदेशी पिण्ड। स्वयं ज्योति-स्वयं से स्वयं है। आहाहा! उसे अपने से परिणमन करके। आहाहा! वह सुख का धाम है। प्रभु! वह आनन्द का स्थल है, वह अतीन्द्रिय आनन्द का द्वीप (टापू) है। आहाहा! बड़ा

समुद्र के समुद्र में टापू कहीं मिले (वहाँ) विश्राम ले। इसी प्रकार यह महाप्रभु बड़ा टापू है। आहाहा!

एक बोहरा कहता था। जामनगर में व्याख्यान में आता था। वह कहता है-हम एक बार जहाज में गये, उसमें समुद्र में लोहचुम्बक का पर्वत होगा, (इसलिए) जहाज खिंच गया। खिंच गया, इसलिए वहाँ कुछ नहीं मिलता, कोई मनुष्य नहीं मिलता। नारियल के वृक्ष (थे) और नीचे दुर्गन्धित पानी पड़ा था। वहाँ तक कोई जहाज को पहिचाने तो आवे। जहाज खिंच गया था। फिर कहे, पानी अन्दर बँधा हुआ हो, नारियल डालें, खोपरा और पानी दो लें, पानी मीठा निकले और खोपरा खायें। आहाहा!

इसी प्रकार भगवान आत्मा... आहाहा! अन्दर में अनन्त-अनन्त पुरुषार्थ के वीर्य से चढ़ाकर.. आहाहा! जिसने अनन्त-अनन्त में खिलावट की है, अनन्त ज्ञान की खिलावट की है। परिणमन किया है न यहाँ! शक्तिरूप पड़ा है, स्वभाव से भले हो। आहाहा! जो वस्तु है, गुण का भण्डार, आनन्द का भण्डार है, उसे विकसित किया है। आहाहा! जैसे कमल लाख पंखुड़ियों से खिले। वैसे भगवान आत्मा अनन्त गुण की निर्मल व्यक्त पर्याय खिल निकलता है। आहाहा!

उसको (कमल को) लाख पंखुड़ियाँ होती हैं। ऐसा सुना है, वहाँ हजार पंखुड़ियोंवाला (कमल है)। गाँव में गये थे। चिखली.. चिखली। वहाँ कहते थे कि यह खेत है, इसमें कमल होता है, दो हजार पंखुड़ियों का होता है। उत्कृष्ट होता है। हजार पंखुड़ियों का एक गुलाब! लाख पंखुड़ियों का सुना है, यह तो अनन्त गुण की पंखुड़ी का आत्मा! आहाहा!

कहते हैं, उसे अन्तर में होने से... आहाहा! **स्वयं ही ज्ञानरूप होनेवाले ज्ञानियों के..** धर्मात्माओं को। एक वचन नहीं लिया। बहुत ज्ञानियों को। आहा! जितने ज्ञानी हुए, उन सब ज्ञानियों (को) **स्वयं ही ज्ञानरूप होनेवाले ज्ञानियों के बाह्य व्रत, नियम, शील, तप, इत्यादि शुभ कर्मों का असद्भाव होने पर..** यह कार्य उनके पास नहीं है। आहाहा! तथापि मोक्ष का सद्भाव है। वस्तुस्वभाव का परिणमन होना, वह मोक्ष का सद्भाव है। आहाहा!

भावार्थ-.. देखो! यह स्पष्टीकरण आया। **ज्ञानरूप परिणमन ही मोक्ष का**

कारण है.. ज्ञान (अर्थात्) त्रिकाली ज्ञान की यहाँ बात नहीं है। चैतन्यबिम्ब प्रभु स्वयं ज्ञानरूप से, सम्यग्दर्शनरूप से, शान्तिरूप से, आनन्दरूप से, स्वच्छतारूप से, ईश्वरतारूप से जो पर्याय में परिणमित होता है, उसे यहाँ ज्ञान का परिणमन कहा गया है। वह मोक्ष का कारण है। **परिणमन ही मोक्ष का कारण है..** बीच में बन्ध का भाव भी जरा मदद करता है, (ऐसा नहीं है), यह अभी बड़ा विवाद है। आहाहा!

विद्यासागर ने लिखा है, व्रत को अन्दर सम्हालना। १२वीं गाथा में आता है न! जाना हुआ प्रयोजनवान। वहाँ ऐसा कि सम्हालना। ऐसा लिखा है, ऐसा अर्थ किया है। बारहवीं गाथा में सम्हालने की कहाँ (बात है)। है, उसे जानता है वह तो। उस-उस प्रकार के ज्ञान की पर्याय का उसका काल है। आहाहा!

मुमुक्षु : एकान्त जंगल में जाए, फिर ध्यान करे..

पूज्य गुरुदेवश्री : वह बाहर में कुछ जाए नहीं। बाहर में भी गिरि गुफा में घुस जाए (परन्तु) यह (आत्मारूप) गिरि गुफा बिना कुछ नहीं मिलता। यह समयसार में ४९ वीं गाथा में संस्कृत टीका में आता है। जयसेनाचार्यदेव की टीका में (आता है), अनुभव की निर्विकल्प समाधिरूप गिरि गुफा में जाने से। आहाहा! वह गिरि गुफा है। बाहर की गिरि गुफा में तो बाघ और सर्प सब रहते हैं। आहाहा! ऐसा मार्ग! सम्प्रदाय में देखो तो व्याख्यान में ऐसी बातें चलती हैं (कि) व्रत करो और अपवास करो, तपस्या करो। भगवान ने बारह वर्ष तपस्या की थी, तब तो उन्हें केवल (ज्ञान) हुआ। अरे.. भगवान! सुन। वह तप तू कहता है, वह नहीं है।

अतीन्द्रिय आनन्द का (वेदन) जहाँ उग्ररूप से प्रगट हुआ है, उसे वहाँ तप कहा है। 'प्रतपन्ते इति तपः' आत्मा की चारित्रदशा है, सम्यग्दर्शनसहित चारित्र है, वह विशेष ओपता है, शोभता है, बढ़ता है, शुद्धि करता है, उसे तप कहा जाता है। यह तो सब लंघन है। वर्षीतप और अमुक तप और... आहाहा!

मुमुक्षु : यह कहते हैं एक बार करके तो देखो, फिर खबर पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : करके देखा नहीं? अभी तक पहले बहुत किया है। ऐसा क्रियाकाण्ड था कि लोग चिल्लाते थे! आहार लेने जाएँ, वहाँ सेठिया शोर मचाये। सेठिया

की बहू (हमको) देखकर ऐसे धूजे (काँपे कि) कैसे होगा? पहले जब (संवत्) १९७७ में भावनगर में आये थे, तब तो तुम (नहीं थे), कणवीवार के हरगोविन्दभाई थे। १९७७ में भावनगर में बिना ठिकाने का था। उमेचन्दजी थे न! सब बिना ठिकाने का था। खबर है न! मिले थे, उमेचन्दजी मिले थे। पहले-पहले गये, तब शोर मचाते थे। ३०-३५ घर जाएँ, तब मुश्किल से आहार मिले। नहीं तो कहीं.. कहीं कुछ.. फिर पम्फलेट छापना पड़ा। अमरचन्दभाई ने (छापा था), हरिभाई के भाई! पम्फलेट छापना पड़ा (कि) इतना इस प्रमाण आहार देना। नहीं तो गर्भ में गलोगे। यह सन् ७७ के वर्ष, (पहली बार) दीक्षा लेकर भावनगर आये थे। लोगों में शोर! लोग व्याख्यान में बहुत आते थे। बाहर में ऐसा बोला जात है कि 'गाँधी जी धर्म में आये हैं।' वे गाँधी संसार के गाँधी थे और ये धर्म के गाँधी हैं। गाँव के उपाश्रय में, हों! वह उपाश्रय है न! कमरा! लोग समावे नहीं। १९७७ का वर्ष! आहाहा! क्रिया तो (ऐसी पालते थे कि) आहार लेने जाएँ वहाँ लोग शोर मचाते थे। जरा कुछ अन्तर पड़े, कलश में पानी का एक बूँद पड़ा हो, और उसे साड़ी छू गयी हो तो बन्द। ग्वार का साग पड़ी हो, ग्वार.. ग्वार! उसका टुकड़ा कहीं पड़ा हो और चलते हुए उसका पैर छू गया (होवे तो) आहार बन्द! बेचारे फिर कितने ही रोवें। अरे रे! हमारे यहाँ आये (और ऐसा हुआ)। गाँव में पहली बार हमारे यहाँ आये (और ऐसा हुआ), यह तो सब धूल-धाणी! सब राग की क्रियाएँ हैं। (उसमें भी) वापस अभिमान (करे), हम यह करते हैं, और हम यह करते हैं और दूसरे नहीं करते। आहाहा!

(यहाँ कहते हैं) **अज्ञानरूप परिणमन ही बन्ध का कारण है;..** उसमें यह परिणमन है, देखा? पहले में भी ज्ञान का परिणमन (लिया था)। अर्थात् स्वभाव का परिणमन। उसमें विभाव का परिणमन है। उस विभाव को अज्ञान कहा। **अज्ञानरूप परिणमन ही बन्ध का कारण है; व्रत,..** (अर्थात्) पाँच महाव्रत। आहा! बारह व्रत। **नियम,..** (अर्थात्) अविग्रह (धारण करना)।

यह श्रीमद् में भी आता है न। 'यम नियम संयम आप कियो' श्रीमद् में आता है। 'यम नियम संयम आप कियो, पुनि त्याग विराग अथाग लह्यो, वनवास लियो मुख मौन रह्यो, दृढ़ आसन पद्म लगाय दियो।' आहाहा! 'जप भेद जपे तप त्योंहि तपे, उर से हि उदासी लही सबसे, सब शास्त्रन के नय धारि हिये, मत मण्डन खण्डन भेद लिये, वह

साधन बार अनन्त कियो तदपि कछु हाथ हजू न परयो, अब क्यों न विचारत है मन से, कछु और रहा उन साधन से' कोई साधन दूसरा है। आहाहा!

नियम,.. अर्थात् यह नियम। इसमें नियम है न! यह नियम। यम अर्थात् महाव्रत। नियम अर्थात् यह नियम। ऐसे 'यम नियम संयम आप कियो' अनन्त बार इन्द्रिय का दमन किया। आहाहा! परन्तु अनीन्द्रिय ऐसे भगवान को पहुँचे बिना.. आहाहा! वे सब (कार्य) धर्म के लिए निष्फल गये। संसार के लिए-भटकने के लिए सफल हुए। आहाहा!

अज्ञानरूप परिणमन ही बन्ध का कारण है; व्रत, नियम, शील, तप इत्यादि शुभभावरूप शुभ कर्म कहीं मोक्ष के कारण नहीं हैं;... जरा भी मोक्ष के कारण नहीं हैं। आहाहा! कठिन काम है। इसे ज्ञान में अभी पहले निर्धार तो करे, फिर अन्दर जाने में प्रयोग करे परन्तु अभी ज्ञान का भी ठिकाना न हो, (वह प्रयोग कब करे)? यह सच्चा ज्ञान (हुए) बिना अन्तर सत् सत्य है, वहाँ कैसे जाया जाएगा? आहा! अभी इससे मदद होगी, इससे ऐसा होगा, इस शुभक्रिया से शुद्ध में वहाँ जाया जा सकेगा, क्योंकि अन्तिम शुभभाव होता है। होता है अर्थात् क्या? आहाहा! अन्तिम शुभभाव (होात है) परन्तु अन्दर उसकी रुचि और लक्ष्य छोड़े, तब भगवान पर लक्ष्य जाता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं, चिमनभाई! आहाहा!

व्रत, नियम, शील, तप इत्यादि शुभभावरूप शुभ कर्म.. (अर्थात्) कार्य। **कहीं मोक्ष के कारण नहीं हैं; ज्ञानरूप परिणमित ज्ञानी के..** आहाहा! उत्कृष्ट लिया न! अन्तिम! आत्मारूप से हुए धर्मी के **शुभ कर्म न होने पर भी..** उस समय व्रत और नियम का विकल्प नहीं है परन्तु अन्दर में स्थिर हुआ है और (आश्रय) उग्र हो गया है, **वह मोक्ष को प्राप्त करता है;..** निचलीदशा में निश्चय और साथ में व्यवहार होता है, वह यहाँ नहीं। जहाँ पूर्ण ज्ञान का परिणमन हुआ, वहाँ तो यह राग जरा भी है नहीं; अतः वहाँ तो व्रत-तप के बिना मोक्ष हुआ। मोक्ष का कारण तो यह हुआ। व्रत, नियम कोई कारण हुआ नहीं। वह तो बन्ध का कारण है। आहाहा! भले नीचे हो, निश्चय भी हो और व्यवहार भी हो। व्यवहार, वह बन्ध का कारण है और निश्चय, मोक्ष का कारण है। ऐसा है।

अज्ञानरूप परिणमित अज्ञानी के वे शुभकर्म होने पर भी,.. देखा? वे शुभकार्य-आचरण—व्रत और नियम, तप और पंच महाव्रत, बारह व्रत और भक्ति यात्रा और पूजा

तथा करोड़ों रुपये खर्च करके बड़ा गजरथ निकाले और रथयात्रा निकाले। आहा! वे शुभकर्म होने पर भी, अज्ञानरूप से परिणमित है (इसलिए); जिसकी दृष्टि आत्मा के ऊपर नहीं है, उसकी दृष्टि ही राग की क्रिया के ऊपर है। आहाहा! **वे शुभकर्म होने पर भी, वह बन्ध को प्राप्त करता है।**

अब इसी अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं:-

मुमुक्षु : दोनों होवे तो मोक्ष होता है, ऐसा धवल में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं। दोनों होवे तो यह किस अपेक्षा से कहा? भावलिंग होवे, वहाँ ऐसा द्रव्यलिंग होता है, ऐसा सिद्ध करने के लिए ऐसा आता है। भाई! मोक्षपाहुड़ में आता है। भाव है, वहाँ ऐसा द्रव्य होता है, ऐसा। होता है इतना। दूसरी जाति का विरुद्ध नहीं होता। इतना बताने को (ऐसा कहा है)। द्रव्यलिंग और द्रव्य महाव्रत के परिणाम; निश्चय हैं, वहाँ ऐसे होते हैं, ऐसा (कहना है)। भावसहित का द्रव्य मुक्ति का कारण है, ऐसा भी शास्त्र में शब्द आता है। पाहुड़ में आता है। समझ में आया? यह तो साथ में अपूर्णता है, इसलिए राग है, यह बताया है, इतना। वह मोक्ष का कारण नहीं है, मोक्ष का कारण तो यह (शुद्धि अंश) है। परन्तु अपूर्ण है, उसमें उसे अभी व्रत के विकल्प खड़े हैं। यहाँ तो वे निकाल डाले।

यहाँ तो जहाँ अकेले आत्मा का परिणमन पूर्ण हो गया, वहाँ यह व्रत के विकल्प भी नहीं हैं, तथापि वे बन्ध के कारण हैं, वे यदि मोक्ष के कारण होवें तो उसे तो ऐसा कुछ नहीं है। मोक्ष का कारण तो अकेला आत्मा रहा। परिणमन, हों!

कलश–१०५

अब इसी अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं:–

(शिखरिणी)

यदेतज् ज्ञानात्मा ध्रुव–मचल–माभाति भवनं,
शिवस्यायं हेतुः स्वयमपि यतस्तच्छिव इति।
अतोऽन्यद्बन्धस्य स्वयमपि यतो बन्ध इति तत्,
ततो ज्ञानात्मत्वं भवनमनुभूतिर्हि विहितम्।।१०५।।

श्लोकार्थ : [यत् एतद् ध्रुवम् अचलम् ज्ञानात्मा भवनम् आभाति] जो यह ज्ञानस्वरूप आत्मा ध्रुवरूप से और अचलरूप से ज्ञानस्वरूप होता हुआ–परिणमता हुआ भासित होता है, **[अयं शिवस्य हेतुः]** वही मोक्ष का हेतु है, **[यतः]** क्योंकि **[तत् स्वयम् अपि शिवः इति]** वह स्वयमेव मोक्षस्वरूप है; **[अतः अन्यत्]** उसके अतिरिक्त अन्य जो कुछ है, **[बन्धस्य]** वह बन्ध का हेतु है **[यतः]** क्योंकि **[तत् स्वयम् अपि बन्धः इति]** वह स्वयमेव बन्धस्वरूप है। **[ततः]** इसलिए आगम में **[ज्ञानात्मत्वं भवनम्]** ज्ञानस्वरूप होने का (–ज्ञानस्वरूप परिणमित होने का) अर्थात् **[अनुभूतिः हि]** अनुभूति करने का ही **[विहितम्]** विधान है।।१०५।।

श्लोक - १०५ पर प्रवचन

यदेतज् ज्ञानात्मा ध्रुव–मचल–माभाति भवनं,
शिवस्यायं हेतुः स्वयमपि यतस्तच्छिव इति।
अतोऽन्यद्बन्धस्य स्वयमपि यतो बन्ध इति तत्,
ततो ज्ञानात्मत्वं भवनमनुभूतिर्हि विहितम्।।१०५।।

१०५ (कलश)। लो, पहले में **'विहितम्'** आया है न! कलश में आया था पहले। **'विहितं शिवहेतुः'** नहीं? आया था। **'शिवहेतुः'** १०३ (कलश)। **'ज्ञानमेव विहितं शिवहेतुः'** १०३, आहाहा!

[यत् एतद् ध्रुवम् अचलम् ज्ञानात्मा भवनम् आभाति] जो यह ज्ञानस्वरूप आत्मा.. यत् एतद् ध्रुवम्.. ध्रुवरूप से और अचलरूप से.. 'ज्ञानात्मा भवनम्' ज्ञानस्वरूप होता हुआ.. 'ज्ञानात्मा भवनम्' (अर्थात्) जैसा स्वरूप है, वैसा भवनम् (अर्थात्) उसरूप सत्त्व होता हुआ। सत् का सत्त्व सत्त्वरूप से परिणमता हुआ। आहाहा! यह पुण्य और पाप, ये कहीं आत्मा का सत्त्व नहीं है, ये कोई आत्मा का कस नहीं है। आहाहा! ऐसा सुने, इसलिए फिर लोगों को, सम्प्रदाय का सुना हो, उसमें ऐसा सुने इसलिए (शोर मचाये कि) ऐ..ई! यह तो व्यवहार को उड़ाते हैं, उड़ाते हैं। व्यवहार को उड़ाते हैं अर्थात्? वह बन्ध का कारण है। जहाँ पूर्ण (दशा) न हो, वहाँ व्यवहार होता अवश्य है, परन्तु है बन्ध का कारण। आहाहा!

जहाँ पूर्ण स्थिरता नहीं.. वहाँ 'आस्रव अधिकार' में आया है न! जघन्य ज्ञान का परिणमन। समयसार (में) आस्रव अधिकार (में) आया है। जहाँ जघन्य ज्ञान का परिणमन है, वहाँ अन्यरूप से जाता है, विकल्प में जाता है, तब तक वहाँ बन्ध है। इतना विकल्प होता है, इतना अभी बन्ध है। यथाख्यात पूर्ण स्थिरता हो गयी, उसे यह नहीं है, ऐसा यहाँ कहा। उसे व्रत का विकल्प-व्यवहार है नहीं। दूसरे को व्यवहार हो, परन्तु वह बन्ध का कारण है। व्यवहार कहीं मददगार है और व्यवहार पालना पड़ता है, ऐसा नहीं है, तथापि चरणानुयोग में ऐसा आता है (कि) उसे पालना, उसका ऐसा करना, उसका ऐसा करना... आहाहा! वह तो वस्तु की स्थिति बतलाते हैं। आहाहा!

'ज्ञानस्वरूपे भवनं' है न? देखा! वजन यहाँ है। भगवान आत्मा का जो चैतन्यस्वरूप है, उसका भवनं (अर्थात्) उसका उसरूप होना। है? ज्ञानस्वरूप से परिणमता हुआ, ज्ञानस्वरूप से होता हुआ.. आहाहा! शुद्ध चैतन्यघन भगवान, उसरूप से होता हुआ। जैसा उसका सत् है, उसरूप से वह होता हुआ। आहा! उसरूप से अर्थात् ज्ञानस्वरूप से अर्थात् उसका जो स्वरूप है, उसरूप से परिणमता हुआ। उसका स्वभाव जो शुद्ध परम आनन्द आदि है, उसरूप से होता हुआ। आहाहा! **परिणमता हुआ भासित होता है,..** और शुद्धरूप से परिणमता हुआ ज्ञानी को भासित होता है। आहाहा! **'अयं शिवस्य हेतुः' वही मोक्ष का हेतु है,... 'अयं शिवस्य हेतुः'** देखा? वही मोक्ष का हेतु है। इतने तो 'ही'

डालते हैं। **क्योंकि वह स्वयमेव मोक्षस्वरूप है;..** क्यों मोक्ष का हेतु है? कि मोक्षस्वरूप है। प्रभु आत्मा है, वह तो मोक्षस्वरूप है। आहाहा! मोक्षस्वरूप न हो तो पर्याय में मोक्षदशा आयेगी कहाँ से? आहाहा! **स्वयमेव मोक्षस्वरूप है;..** भी क्यों कहा? कि उसका परिणमन है, वह मोक्ष का हेतु है और वह स्वयं भी मोक्षस्वरूप है, ऐसा। आहाहा! उसका परिणमन है, वह मोक्ष का कारण है और यह क्यों? कि वस्तु स्वयं मोक्षस्वरूप है।

उसके अतिरिक्त अन्य जो कुछ है वह बन्ध का हेतु है.. क्यों वापस? **'स्वयम् अपि बन्धः'** स्वयं बन्धस्वरूप है। बन्धस्वरूप है, वह बन्ध का कारण है; मोक्षस्वरूप है, वह मोक्ष का कारण है। आहाहा! **ज्ञानस्वरूप होने का (–ज्ञानस्वरूप परिणमित होने का) अर्थात्..** जैसा स्वभाव है, वैसा होने का। **अर्थात् अनुभूति करने का ही आगम में विधान है।** अर्थात् फरमान है। लो! बारह अंग में अनुभूति (करने को कहा है)। बारह अंग का आया है न! कि बारह अंग भले विकल्प हैं, परन्तु उसमें कही है अनुभूति। उस ऐतिहासिक ने भी ऐसा कहा है, (कि) जैनधर्म वह अनुभूति है। जापान का कोई पुराना ऐतिहासिक है। वह (यहाँ) आया।

अनुभूति करने का ही.. 'अनुभूतिः हि' है न? **'हि' आगम में विधान है।** अर्थात् फरमान है। आहाहा! विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)